

RNI No. UPHIN/2010/35514

ISSN-0976-349X

अंक-20

दिसम्बर-2021

यू.जी.सी. केयर लिस्ट में सम्मिलित

इतिहास दृष्टि

संपादक

सैयद नजमुल रज़ा रिज़वी

संपर्क

228-आर, पूरबी बशारतपुर
निकट एच.एन. सिंह क्रॉसिंग
गोरखपुर-273004

35.	जल क्रांति वर्तमान एवं भविष्य (एक विश्लेषण)	187
	- प्रो० आराधना	
	- शिव कुमार	
36.	प्राचीन मुद्राओं पर अंकित भारतीय देवी-देवता व उनके प्रतीक : एक अध्ययन	192
	- रानी कुमारी	
37.	‘मुक्तिबोध की समीक्षा....“कामायनी के संदर्भ में”	201
	- डॉ. सव्यसाची	
38.	मौरीशस के हिन्दी कथा साहित्य में समसामयिक चिन्तन	206
	- गार्गी	
39.	१९वीं शताब्दी में धार्मिक एवं सामाजिक सुधार आंदोलनों का : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	210
	- डॉ० नरेश कुमार साव	
40.	सविनय अवज्ञा आंदोलन	214
	- परमेश्वर प्रसाद साहू	
41.	स्वामी अग्रदास के भक्तिकाव्य में रसिक-साधना की अभिव्यंजना	222
	- डॉ. अवधेश कुमार	



स्वामी अग्रदास के भक्तिकाव्य में रसिक-साधना की अभिव्यंजना

डॉ. अवधेश कुमार

(अतिथि शिक्षक), हिन्दी विभाग

डॉक्टर हरीसिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

हिन्दी साहित्य में स्वामी अग्रदास का नाम रसिक सम्प्रदाय के अंतर्गत आता है और इन्हें ही रामभक्ति काव्य में रसिक परम्परा का व्यवस्थित प्रवर्तक माना जाता है। इनके पहले भी यह रसिक काव्य-परम्परा का प्रचलन था, लेकिन स्वामी अग्रदास ने जो व्यवस्थित सैद्धांतिक नींव डाली, वह नहीं थी। इस संदर्भ में डॉ. भगवती प्रसाद सिंह लिखते हैं कि, “रसिकरामापासना, साधना और साहित्य, दोनों दृष्टियों से शठकोप से लेकर श्री कृष्णदास पयहारी तक, इतनी विकसित हो चुकी थी कि उसके बिखरे सूत्रों को एकत्र कर एक नई साधनापद्धति का रूप दिया जा सकता था। व्यक्ति प्रधान होने के कारण, अब तक अपनी साधना को रहस्यमय बनाये रखने में ही आचार्य लोग उसकी मर्यादाक्षर समझते थे, किन्तु ज्यों-ज्यों साधकों की संख्या बढ़ती गयी, उसे एक व्यवस्थित रूप देने की आवश्यकता का अनुभव विचारशील रामभक्त करने लगे। इनमें अग्रदास जी पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने हिन्दी भाषा में ‘ध्यानमंजरी’ की रचना कर रसिकसाधना का एक व्यावहारिक रूप प्रस्तुत किया और शताब्दियों से ‘रहस्य’ बने हुए भावों को संसार के सामने रखा— श्री गुरु-संत अनुग्रह से अस गोपुरवासी। रसिकजनन हित करन रहसि यह ताहि प्रकासी।।”¹

इसी अभिमत से प्रेरित होकर शायद गणपतिचन्द्र गुप्त रसिक-सम्प्रदाय और इसके व्यवस्थित काल के सम्बन्ध में लिखते हैं कि, “हिन्दी साहित्य के उत्तर मध्य युग के आरम्भ काल (17वीं शताब्दी) में ऐसे धर्म-सम्प्रदाय की स्थापना हुई, जिसमें रसिकता प्रधान भक्ति को सर्वाधिक महत्व दिया गया। इस सम्प्रदाय की विभिन्न शाखाएँ ‘जानकी-सम्प्रदाय’, ‘रहस्य-सम्प्रदाय’, ‘जानकी बल्लभ-सम्प्रदाय’, ‘सिया-सम्प्रदाय’ आदि नामों से प्रसिद्ध हैं; किन्तु सामूहिक रूप से इन सबको ‘रसिक-सम्प्रदाय’ के नाम से पुकारा जाता है। इन सबमें राम के रसिक या भोग-विलासी रूप की उपासना करते हुए उनकी पत्नी सीता या जानकी को राम की अपेक्षा उसी भाँति अधिक महत्व दिया जाता है, जिस भाँति राधाबल्लभ-सम्प्रदाय में कृष्ण की अपेक्षा राधा को महत्व दिया जाता है। इन सम्प्रदायों के अनुयायी स्वयं भी राम के साथ अपना मधुर सम्बन्ध स्थापित करते हुए उनकी श्रृंगारी लीलाओं का ध्यान एवं चिंतन करते हैं तथा अपने आपको ‘भक्त’ न कहकर ‘रसिक’, ‘रसिक भक्त’ कहना अधिक पसंद करते हैं।”² इसी काव्य परम्परा में स्वामी अग्रदास का नाम सर्वोपरि है।

स्वामी अग्रदास ‘भक्तमाल’ के रचयिता नाभादास के गुरु और जयपुर, राजस्थान के प्रसिद्ध स्वामी श्रीकृष्णदास पयहारी के शिष्य थे। रामकाव्य परम्परा में गोस्वामी तुलसीदास के बाद इन्हीं का नाम लिया जाता है। इनका जन्म सोलहवीं शती के उत्तरार्ध में राजस्थान में हुआ था तथा श्रीकृष्णदास पयहारीजी के देहावसान के अनन्तर इन्होंने अपनी गद्दी जयपुर के समीप ‘रैवासा’ नाम स्थान पर कर ली थी। ‘भक्तमाल’ में इनके जीवन-संदर्भ के बारे में लिखित है कि, “श्रीअग्रदास का प्रादुर्भाव फाल्गुन शुक्ल द्वितीया सं. 1553 वि. को राजस्थान के एक गाँव में हुआ था। इनमें भक्ति के संस्कार बचपन से ही विद्यमान थे, अतः अत्यंत अल्पवय में ही आपने घर छोड़कर श्रीपयहारीजी महाराज की शरण ग्रहण कर ली। श्रीपयहारीजी ने इन्हें योग्य जानकर श्रीराम-मंत्र की दीक्षा दी और उपासना-रहस्य एवं शरणागति-माहात्म्य का उपदेश दिया।”³ इनकी भक्ति-भावना और जीवन सिद्धांतों को लेकर यह पंक्तियाँ अतिप्रसिद्ध हैं—

“पहरे राम तुम्हारे सोवत। मैं मति मंद अंध नहीं जोवत।।

अपमारग मारग महि जान्यो। इंद्री पोषि पुरुषारथ मान्यो।।”⁴

डॉ. बच्चन सिंह लिखते हैं कि, “अग्रदास, स्वामी रामानंद के शिष्य-परम्परा के चौथी पीढ़ी में हुए— रामानंद, अनन्तानंद, श्रीकृष्णदास पयहारी और अग्रदास। वे पयहारी के शिष्य थे। पयहारी गलता गद्दी के स्वामी थे। उनके अवासान के बाद उन्होंने जयपुर के पास रैवासा में अपनी अलग गद्दी स्थापित कर ली और रसिकापासना के प्रचार में लग गये। युगल प्रियाजी उन्हें सीता की प्रिय सखी चन्द्रकला का अवतार कहते हैं।”⁵ वास्तव में राजस्थान के जयपुर के निकट ‘रैवासा’ नामक

स्थान इस सम्प्रदाय का सबसे बड़ा तीर्थ है। इसी सम्प्रदाय में आगे चलकर अनेक संत और महाराज दीक्षित हुए। अग्रदास के प्रमुख शिष्यों में नाभादास, प्रयागदास, पूरनदास, बनवारीदास, नरसिंहदास, भगवानदास, बनवारीदास, जगन्नाथदास, खेमदास, धर्मदास आदि का नाम प्रमुख है। नाभादास ने 'भक्तमाल' में इनकी प्रशंसा में एक छप्पय लिखा है, जिसमें इन्होंने बताया है कि अग्रदास भगवत् सेवानुरागी थे, इन्होंने एक पुष्पवाटिका लगायी थी और इससे ये बड़ा अनुराग रखते थे। प्रियादास ने आमेर के राजा मानसिंह का इनकी सेवा में उपस्थित बताया है। मानसिंह अकबर के समकालीन एवं उसके प्रिय दरबारी थे। इनके मतानुसार महाराज मानसिंह ने इसी बाग में स्वामी अग्रदास से भेंट की थी। इस भेंट के बाद की राजाओं में भी इस सम्प्रदाय के प्रति निरन्तर आस्था बढ़ती गयी और अन्य राज्यों के महाराजा भी धीरे-धीरे रसिक सम्प्रदाय में दीक्षित होते गये। रीवाँ के महाराज रघुराज सिंह, महाराज विश्वनाथ सिंह जैसे कई राजाओं का इस सम्प्रदाय से गहरा नाता रहा है।

हिन्दी साहित्य में अग्रदास के प्रमुख ग्रंथों का प्रमाण मिलता है, जिनमें प्रमुख रूप से 'कुंडलियाँ या हितोपदेश उपशाखाँ बावनी', 'ध्यानमंजरी या राम ध्यानमंजरी', 'श्रृंगार रससागर' और 'अष्टयाम', जो कि संस्कृत भाषा में हैं। सन् 1985 में 'अग्रदास ग्रंथावली' का प्रकाशन बुन्देली पीठ, डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, मध्यप्रदेश से हुआ है, जिसका संपादन डॉ. बलभद्र तिवारी ने किया है। इस ग्रंथावली में 'कुंडलियाँ', 'ध्यानमंजरी' और 'साधन गीतावली' का महत्वपूर्ण संकलन समाहित है। 'कुंडलियाँ' में नीति और उपदेश से संबंधित छंद लिखे हैं और 'ध्यानमंजरी' रसिकोपासना का सिद्धांत ग्रंथ है, जिसमें राम के ध्यान का वर्णन है। इसके अतिरिक्त इनकी संस्कृत रचना 'अष्टयाम' है, इसका प्रकाशन रामकृष्णदास द्वारा अयोध्या से 1936 ई. में किया गया। इसमें श्रीराम के ऐश्वर्य रूप की भव्य झांकी समाहित है। इस कृति की रचनात्मक भव्यता से पता चलता है कि वे संस्कृत और भाषा के प्रकांड विद्वान भी थे। यहाँ भाषा से तात्पर्य मध्ययुग की उस प्रचलित भाषा से है जिसे विद्यापति ने 'देसिल बअना सब जन मिट्ठा' कहा है और कबीर ने 'का भाषा का संस्कृत प्रेम चाहिए साँच' कहा है और रीतिकाल के प्रसिद्ध कवि केशव ने 'भाषा बोलि न जानहीं जिनके कुल दास' से सम्बोधित किया है। यह भाषा ही उस युग की काव्यभाषा है, जिसमें पूर्वी और पश्चिमी हिन्दी बोलियों के सिवा मध्यदेश की सभी भाषाओं के शब्द समाविष्ट हैं।

स्वामी अग्रदास का विशेष महत्व रामभक्ति में माधुर्य भाव के प्रवर्तक के रूप में है। रामभक्ति शाखा में माधुर्य भाव के इस उपासक को इस सम्प्रदाय में 'अग्रअली' के नाम से जाना जाता है। मसलन, इनके काव्य-छंदों में अग्रअली की छाप दिखाई देती है। हालांकि ये स्वयं को जानकी जी की सखी मानते थे। सर्वप्रथम अग्रदास ने ही रामभक्ति परम्परा में रसिक भावना या कहें माधुर्य भावना का समावेश किया, जिसकी छवि निम्न पंक्तियों में देखी जा सकती है—

“प्रीतम बात न बूझई धरो सुहागिनि नाउ।
 धरो सुहागिनि नाउ निषय कुटनी बहकावै।
 व्यभिचारिनि बेगुनी नाह नेरौ नहि आवै।
 हृदय शुद्धि बिन नारि कहाँ तें खसम पिछा ले।
 बातिन को पतिवर्त कंत कोविद क्यों मानै।
 अग्र कहै या चाल से कैसे स्वामि सुहाय।
 प्रीतम बात न बूझई धरो सुहागिनि नाउ।।”⁶

स्वामी अग्रदास इनकी कृतियों में 'ध्यानमंजरी' का विशेष अवदान है। इसका कारण यह है कि इन्होंने अपने सिद्धांतों का प्रतिपादन 'ध्यानमंजरी' में समाहित किया है। इस कृति में उन्होंने यह घोषित किया है कि राम की रसिक भक्ति के समक्ष ज्ञान, योग, तप आदि अन्य सभी साधन निस्सार प्रतीत होते हैं। इसकी पुष्टि हेतु वे कहते हैं कि, “अमल-अमृत-रसधार रसिक जन यही रस पागे। तेहि को नीरस ज्ञान योग तप छोई लागे।।”⁷ निश्चित रूप से 'रसिक' शब्द से इनका लौकिक और आध्यात्मिक नाता है, जिसकी गहराई में ये अपने जीवन के रिश्तों को नूतन अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। इनकी दृष्टि में लोक का कल्याण और उत्थान भी रसिक मन से ही संभव है। शायद इसीलिए वे इस शब्द का प्रयोग अपने काव्य-छंदों में बार-बार करते हैं। इनका मानना है कि, 'श्री गुरु-संत-अनुग्रह ते अस गो पुर वासी। रसिक जनन हित करन रहसि यह ताहि प्रकासी।।' कहने

का तात्पर्य यह है कि इस जगत में गुरु के अनुग्रह और उसके बताये मार्ग पर चलकर ही हम प्रभु के उपासक रसिक जनों का कल्याण संभव है।

अग्रदास ने 'कुण्डलियों' के दृष्टांतों के माध्यम से लोक को उपदेश देने का उत्तम साधन माना है। इनकी लोकोक्तियों में समकालीन जीवन का लोकरंग को रेखांकित करती हैं। इनका कहना है कि यदि हम अपने जीवन में अपने प्रभु से विमुख हो जायेंगे तो यह संसार और इसमें व्याप्त सभी वस्तुएँ, नाते-रिश्ते सभी बैरी के समान लगने लगेंगे। इस अर्थ में उनकी यह कृति लोक को समर्पित है, जो आम जनमानस को अपने आराध्य और उनकी संस्कृति से परिचय कराती है। इन उपदेशों के माध्यम से अग्रदास ने रामभक्ति को प्रधान और सांसारिकता को गौण रूप में बताकर धर्म, समाज और संस्कृति के विसंगतिपूर्ण तत्वों को त्याग देने का आग्रह किया है। कुण्डलियाँ का यह पद द्रष्टव्य है—

‘महतौ दुरौ पिआर मैं को कहि बैरी होइ॥
को कहि बैरी होइ जीवन माया मैं राख्यौ॥
हरि हीरामन त्यागि बृथाँ काँचै मन राख्यौ॥
मृग तिरना संसार अमर पुर लौं जौ धावै॥
सीता पति पन बिमुख सुखहिं सपने नहिं पावै॥
अग्रदास झूठी कहै तो हिय के नैनन जोइ॥’⁸

राममोपासना में श्रृंगार-रस के आचार्य के रूप में अग्रदास विख्यात हैं। नाभादास कृत 'भक्तमाल' में अग्रदास जीवन-संदर्भ के सम्बन्ध में अनेक कथाओं का प्रसंग वर्णन मिलता है। रसिक उपासक इन्हें श्रीजानकी जी की प्रिय सखी श्रीचन्द्रकलाजी का अवतार माना जाता है। 'श्रीरामचरितमानस' में जानकी जी की एक प्रिय सखी का उल्लेख है, जिसे आगे कर जानकी जी पुष्पवाटिका में रामचन्द्र जी के दर्शन को जाती है, 'चली अग्र प्रिय सखी सोई। प्रीति पुरातन लखै न कोई' उस सखी का नाम श्री चन्द्रकला है। कहते हैं कि वही अग्रगामिनी, प्रिय सखी चन्द्रकलाजी अग्रदास यानी अग्रअली के रूप में प्रकट हुई। उनके आविर्भाव का उद्देश्य रामोपासना को मधुर रस की उपासना का प्रचार करना था। रामोपासना में 'रसिक-सम्प्रदाय' की स्थापना का श्रेय इन्हें ही प्राप्त है। इस सम्प्रदाय के उपासक 'ध्यानमंजरी' को आधारभूत ग्रन्थ मानते हैं। फलतः इसी का प्रभाव है कि इस सम्प्रदाय के उपासक भक्त अपने आपको जानकीजी की सखी मानकर उपासना एवं काव्य रचना करते हैं।

'ध्यानमंजरी' में स्वामी ने रसिकोपासना को संहिता का रूप दिया है। कदाचित् इन्हीं तथ्यों के आधार पर यह कृति इस सम्प्रदाय की 'गीता' मानी जाती है। इसका प्रारम्भ 'सीता ईष्ट जानकी मंत्र। उँ क्लीं रैं रैं रैं जानुकी नाथाय नमः॥' से प्रारम्भ होता है। कवि ने अपने आराध्य राम के तारक, भक्तवत्सल और रसिक रूप को प्रस्तुत किया है। इसमें गुरु और संत के अनुग्रह की महिमा का गान सर्वत्र दिखाई देता है। जैसे—

‘सुन आगम विधि अर्थ कछुक जा मनहि सुह यौ।
यह मंगल कर ध्यान जथा मति बरन सुनायौ॥
श्री गुरु संत अनुग्रह ते आस गोपुर बासी।
रसिक जनन हित करनर हसिय ताहि प्रकासी॥
ध्यान मंजरी नाम सुनत मन मोद बढ़ावै।
श्री श्रीरघुवर को दास मुदित जन अग्रस गावै॥’⁹

इनकी कृति 'साधन-गीतावली' के प्रारम्भ में किसी प्रकार का मंगलाचरण नहीं दिखाई देता है। इनके समस्त काव्य-छंद भारतीय संगीत परम्परा से प्रभावित होकर रचे गये हैं, जिसमें राम की भक्ति को विषय-वस्तु का आधार बनाया गया है। समस्त भक्तिकाव्य राम-मारू, टोड़ी, गौरी, धनाश्री, सोरठी, बिलावल, आसावरी, कल्याण, कानरी, सारंग, केदारी, जैतश्री, ललित, मालव, देवगंगाधर, हमीर, अडानो, रामनगरी, देव गंधार आदि में निबद्ध किये गये हैं। इसमें गेयता के साथ भावपूर्णता का समावेश अधिक है। भाषा में संस्कृत, ब्रज और बुन्देली की मिश्रित छटा विद्यमान है। निश्चित रूप से लेखक ने समस्त रामकथा से मार्मिक प्रसंगों को उठाकर रसों के अनुकूल रागों का

नियोजन किया है और बीच-बीच में संसार की असारता और परम ईश्वर के सान्निध्य के उपदेश भी बद्ध हैं। जैसे—

“ज्यौ ज्यौ भीजै कामरी त्यौ त्यौ भारी होई॥
त्यौ त्यौ भारी होई विमुख जीवै जु बहुत दिनु॥
अधर्म नित्य प्रति अधिकरै बूझिल अपनौ तनु॥
सिश्नु उदर सौ काज लोक परलोक न सूझै॥
पहिर अविद्या कवच काहू नहि बूझै॥
‘अग्र’ कहैं हरिनाम बिनु तर न सकै भव तोई॥”¹⁰

इस प्रकार देखा जाय तो अग्रदास की इन कृतियों में मध्ययुगीन समाज को संस्कृति, धर्म, उपसना और व्यावहारिक जीवन के प्रति प्रेम-भाव जगाने का महत्वपूर्ण प्रयास किया गया है। सगुण भक्ति में अनन्य आस्था रखने वाले, जिसके बल पर तत्कालीन भारतीय राजाओं और जन समाज को ऐसा सम्बल मिला जो भारतीय संस्कृति को पतनोन्मुख होने से बचाने में सहायक हुआ है।

स्वामी अग्रदास अपने आराध्य स्वरूप को पाँच रूपों में पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी और अर्चावतार का वर्णन किया है। इसमें ‘पर’ स्वरूप को अधिक महत्व दिया गया है। राम को ‘ब्रह्म’ और सीता को ‘शक्ति’ का स्वरूप स्वीकार करते हैं। नित्य-किशोर वय, सौन्दर्य-सिन्धु गुणातीत होते हुए भी श्रीराम अपनी प्रियतमा सीता के साथ लोक में विहार करते हैं। सीताजी उनकी पराशक्ति हैं। अपने उपासक एवं भक्तों को मुक्ति प्रदान करने के उद्देश्य से ही वे अपने परिकरों सहित सरयू तट के किनारे लीलाभूमि अयोध्या में अवतार धारण करते हैं—

“मंगल अवधि अवधि आए री।
वीर सहित रघुवीर जानुकी मिलि सुख सिंधु बढ़ाये।
आज सुदिन सुभ उदै सखी री सब संताप नसाए।
प्राण रहित दादुर पुरवासी रघुपति जलद जिवाए।
सुवसु वसी दिसा सरयू तट घर घर होत बघाए।
अग्र उछाह अमित कौसल्या भए मनोरथ भारी॥”¹¹

भक्तिकाव्य की आध्यात्मिक अभिव्यंजना के साथ इन्होंने अपने आराध्य राम-जानकी के माध्यम से लोकजीवन और प्रकृति का भी सजीव वर्णन किया है। विभिन्न ऋतुओं, त्यौहार, खेलों और विविध कलाओं के बीच राम-सीता का श्रृंगार रचाना तथा दोनों का अपने भक्तों की अनुग्रह देना आदि अत्यन्त विलक्षण रूप में प्रस्तुत किया है—

“कमल कमल के मध्य जुत्थ मिलि भ्रमर गुँजारै।
मानहु मुनि जनहि वेद धुनि शब्द उचारै॥
त्रिविध बैआर विहार बहत निसि दिन अघहारि।
सीतल मंद सुगंध परम अति आनंद कारि॥
बोलत चक्रवाक कुंडति अति मन मोद बढ़ावै।
मानहु परम सुजस निकर मिलि गंध वै-गावै॥”¹²

रसिक उपासक अग्रदास ने मानव जीवन की विभिन्न गतिविधियों के साथ राम और जानकी को जोड़कर उनके प्रति असीम आसक्ति को आकृष्ट किया है। अवतार लीला में कवि का माधुर्य-भाव अदृश्य रहता है, जिसका आस्वादन अवतरित सखी, सखा, दास आदि अंतरंग भाव से आश्रित ही कर सकते हैं। वस्तुतः रसिक साधक का चरम लक्ष्य दिव्य दम्पत्ति की सेवा व युगल सरकार की क्रीड़ाओं के दर्शन-सुख का अवसर प्राप्त करना ही है। अग्रदास सखी के माध्यम से बसंत ऋतु में प्रभु के खेल के माध्यम से भक्ति के सौन्दर्य-रस का पान करते हैं। जैसे—

“अबकै बसंत अधिक बनि आयौ।
खेलत हुते सदैव अवधिपुर यह सुख कबहु न पायौ।
और वेर ए बहुत सखी मिलि भरती भर पिचकारी।
अबकै खेल सरोतर सनमुख कहि न जाइ छवि न्यारी॥”¹³

अग्रदास ने अपने आराध्य के शिखनख, श्रृंगार वर्णन में कोई कसर नहीं छोड़ी है। अपने इष्ट के राम के रूप-सौन्दर्य को बहुत की मनोहर रूप में चित्रित किया है। राम के कमलवत् नयन,

कानों के कुण्डल, कपोल, अधर और मधुर मुस्कान को सुन्दर ढंग से रेखांकित किया है। इस आराध्य रूप की छटा इस प्रकार देखी जा सकती है—

“देखौ भाई रुचिर राम के अंग।

सोभा सकल मनहु तीरथ कौ मिलि आई इक संग।

वदन इन्दु राजीव दल लोचन कुंडल झलक कपोल।

अरुन अधर द्विज कुंद कांति सुक नासा मुद बोल।

मधुर हास मुसकानि मनोहर विगसित मनो अरविन्द।।”—(अ.ग्रं., पृ. 68)

उपासक अग्रदास ने अपने भक्तिकाव्य में राम के साथ माता जानकी का भी सौन्दर्य चित्रण बहुत ही मनोरम ढंग से उद्धृत किया है, जिसके सौन्दर्य की छटा अनूठी और रसिक जन को रिझाने वाली है। ‘पदम पानि पद चित्र महावर पोति तंबोल कज्जल छवि पावत। सहज सुभग वैदेही अंग अंग अगर स्वामि इहि भाँति रिझावत।।’ अग्रदास के राम—जानकी आराध्य होकर भी आम जनमानस की तरह श्रृंगार में प्रवृत्त होते हैं और ये देवताओं की भाँति सर्वसाधारण जनमानस पर अनुग्रह करते हैं।

रसिक साधना का साध्य तत्व दिव्य दम्पति सेवा और युगल केलि के लोकोत्तर रस का आस्वादन है। इस साधना में प्रवृत्ति भगवत्कृपा से मिलती है। यदि संतो की कृपा हो गयी तो उपासक को आराध्य की कृपा स्वयं प्राप्त हो जाती है। फलतः वह सांसारिक सम्बन्धों को त्यागकर अपने ईश्वर या आराध्य के साथ संतो की सेवा में लीन हो जाता है। अर्थात् साधक या उपासक जब अपने गुरु के शरण में चला जाता है तो ईश्वर, जीव और जगत् सम्बन्धी दार्शनिक तत्वों को स्वतः सिद्ध हो जाता है। इस बात को हम स्वामी अग्रदास के जीवन—संदर्भों से समझ सकते हैं। रसिक सम्प्रदाय के उपासकों की मान्यता है कि स्वामी अग्रदासजी के जीवन में भक्ति के संस्कार बचपन से ही विद्यमान थे, अलबत्ता बचपन में वे घर छोड़कर गलता चले गये और गलता गादी के श्रीकृष्णदास पयहारीजी की शरण ली। परमसिद्ध श्रीकृष्णदासजी को उन्हें जानकी जी की प्रिय सखी श्री चन्द्रकलाजी के अवतार के रूप में पाकर बहुत आनन्दित होकर उन्हें मन्त्रोपदेश देते हैं। गौरतलब है कि स्वामीजी के लिए यह दिन बड़ा उल्लासपूर्ण था। सभी संतों एवं उपासकों ने इन्हें अपना आशीर्वाद दिया। शीघ्र ही अग्रदास के हृदय में प्रेमा भक्ति का उदय हुआ। उपासना पद्धति की दिनचर्या में वे प्रातःकाल से ही भगवान नाम—जप के साथ श्रीरामचन्द्र की मानसी सेवा में संलग्न रहते। भजन बिना जीवन का एक क्षण भी वे नागवार समझते थे। अर्थात् अपना पूरा समय आराध्य की ध्यान—साधना में ही देते। वे कहते हैं कि—

“जागी था सौ रमि गया आसन रही भिभूत।।

आसन रही भिभूत प्रान जब कियौ पयानौ।।

सहज ही विरकत भयौ कठिन मारग मैं जानौ।।

मृत्यु गुरु उपदेश चलत कछु विलमु न कीनौ।

तनु धर घट बड़ कियौ सोई मल संग करि लीनौ।।

‘अग्र’ कहै आयुष अथिर रमै जँह तँह ऊत।।

जोगी था सौ रम गया आसन रही विभूत।।”¹⁴

रामभक्ति का सैद्धांतिक और शास्त्रीय पक्ष इस रसिक साधना से और अधिक पुष्ट होता है। इस दृष्टि से रसिक साधना के शास्त्रीय पक्ष का अध्ययन आवश्यक हो जाता है। भक्त अग्रदास ने मनुष्य—जीवन के मूल्य को जैसा समझा और उसके एक—एक पल का जैसा उपयोग किया, जैसा बहुत कम लोग ही कर पाते हैं। इन्होंने इस सम्बन्ध में साधकों को जो चेतावनी दी है, वह मूल्यवान है। उन्होंने कहा है कि यह मत समझो कि मरने के बाद ही तुम्हें अग्नि को समर्पित किया जायेगा। तुम्हारी देहरूपी झोपड़ी में आग पहले ही लगी हुई है, जो धीरे—धीरे सुलग रही। यदि प्राण—रक्षा चाहते हो तो गुरु के उपदेश और हरि भजन के सहारे इससे जितनी जल्दी हो सके निकल जाओ। ‘संसा अंधेरी छाँड़ दे हरि भज लाहौ लेहूँ।’ इनके विचार से जो श्वास इस नश्वर शरीर से निकल जाता है, वह फिर नहीं आता। यह जीवन तो अंजलि में भरे जल के समान है, धीरे—धीरे घटता ही रहता है। जीवन में अपने आराध्य राम के सिवाय किसी के पर भरोसा न करो। तुम अपने ऊपर ही भरोसा करके ईश्वर का ध्यान लगाओ। ये कहते हैं कि—

“गंगा कठौती माझ है जो मन चंगा होई॥
जो मन चंगा होई अविद्या संग निवारै॥
श्री गुरु के उपदेश हृदय हरि पद दृढ़ धारै॥
वात न ही के दीपति मर कहु जात न देख्यौ॥
जल प्रवाह पर चित्र कहौ कौनै अवरेख्यौ॥
‘अग्र’ भरथ कहि मनु कथा करौ भरोस न कोई॥”¹⁵

यह सर्वविदित है कि रसिक उपासना-पद्धति की परम्परा को सम्यक् रूप से नियोजित, संगठित एवं प्रवर्तित करने का श्रेय स्वामी अग्रदासजी को है। इस बात की पुष्टि इनके परम शिष्य नाभादास ने अपनी कृति ‘भक्तमाल’ में रेखांकित किया है। इसके कृति के अनुसार कृष्णदासजी के परमधाम पधारने के पश्चात् उनके सबसे बड़े शिष्य श्रीकील्हदेवजी गलता गद्दी पर बैठे। अग्रदास गलता में रहकर भजन करते और कील्हदेवजी तथा सन्तों की सेवा करते। एक दिन अग्रदासजी ने भूल से श्रीकील्हजी की लंगोटी पहन ली। श्रीकील्हदेवजी ने अग्रदास से कहा, ‘अग्रदास, तुमने मेरी लंगोटी पहन ली।’ अग्रदास के मन में विचार आया कि जहाँ तेरी-मेरी का भाव हो वहाँ रहना ठीक नहीं। वे उसी दिन कहीं अन्य जगह पर जाकर रहने का निश्चय कर वहाँ से चल पड़े। विचरण करते हुए राजस्थान के जयपुर से तीस मील दूर रेवासा नामक स्थान पर पहुँचे। वहाँ के लोगों ने कहा, ‘महाराज, यहाँ जल का बड़ा कष्ट है। प्रतिवर्ष न जाने कितने जीवों का प्यास के मारे प्राण निकल जाते हैं। आप ऐसी कृपा करें कि जिससे यह कष्ट दूर हो जाय।’ स्वामी अग्रदास को उन पर दया आयी। उन्होंने एक स्थान पर अपना चिमटा गाड़ा और उसी समय वहाँ मीठे जल का स्रोत फूट पड़ा। फिर वहीं एक विशाल कुआँ बनवाया गया, जो आज भी यहाँ विद्यमान है।

यदि हम इनके जीवन की अंतिम समय की दिनचर्या की बात करें तो अग्रदासजी निरन्तर इसी बाग-वाटिका की सेवा करते हुए युगल सरकार राम-जानकी की मानसी सेवा एवं नाम जप भी करते रहते। मानसी-सेवा में कभी-कभी इतना डूब जाते कि बाग की सेवा बन्द हो जाती और अपनी सुध-बुध खोकर एक ही स्थान पर घंटों बैठे ही रह जाते। प्रेमाश्रु तो उनके नेत्रों से सदा बहते ही रहते। एक बार महाराज मानसिंह उनके दर्शन करने आये। साथ आये द्वारपालों को बाहर छोड़ स्वयं वाटिका में चले गये। उस समय अग्रदासजी वाटिका के सूखे पत्ते बीनकर बाहर फेंकने आये। बाहर द्वारपालों को देख उन्हें सम्भवतः जनकपुरी या अयोध्या का ऐसा उद्दीपन हुआ कि वे समाधिस्थ से वहीं बैठे रह गये। बहुत देर हो गयी उन्हें बाहर बैठे-बैठे। और मानसिंह को भीतर प्रतीक्षा करते-करते। नाभाजी उस समय वाटिका में थे। वे अग्रदासजी को देखने बाहर आये। उस समय अग्रदासजी निश्चल, निस्पन्द अवस्था में ध्यानमग्न बैठे थे और उनके नेत्रों से अश्रुधारा बह रही थी। उनकी यह दशा देख नाभाजी की भी वही दशा हो गयी। कुछ देर बात मानसिंह बाहर आये और गुरु-शिष्य दोनों को भाव समाधि में डूबा देख धन्य हुए।

इस प्रकार निश्चित रूप से “अग्रदास मध्ययुगीन रामकाव्य को एक नई दिशा देने वाले ऐसे प्रथम संत कवि हैं जिन्होंने तुलसी के मर्यादा-पुरुषोत्तम राम को लीला-पुरुषोत्तम राम के रूप में स्थापित करने में ऐसी साधना पद्धति का प्रवर्तन किया जिसमें भक्ति पाँचों रसों को समान अधिकार दिया है।”¹⁶ रसिक लीला के उपासक अपने आराध्य रामजानकी के साथ भक्तिरस का आनन्द लेते हैं और अपने जीवन को साकार करते हैं। रसिक उपासकों के संदर्भ में डॉ. भगवती प्रसाद सिंह कहते हैं कि, ‘विधि निषेध से परे रहकर रात-दिन राम की छवि-माधुरी का पान करना ही इनका धर्म है। ‘आदर्श रसिकों’ की विराग-वृत्ति इतनी तीव्र होती है कि शीत से बचने के लिए एक गुदरी के अतिरिक्त और कोई वस्तु वे अपने पास नहीं रखते। गले में तुलसी माला, मस्तक पर तिलक, दोनों भुजाओं में रामायुध की छाप, कमर में लगौंटी, हाथ में कमण्डल और शरीर में पीले रंग का वस्त्र, यही इनका बाना है। षडक्षर राम मन्त्र का उपदेश, रासग्रंथों का स्वाध्याय, राम रास का ध्यान और तद्विषयक पदों का गान करते हुए, वे अपना कालक्षेप करते हैं। राम रास के दिव्य रस से छके हुए इन भक्तों को अन्य साधन-प्रणालियाँ खारी लगती हैं।’ निश्चय ही अग्रदास न रामभक्ति काव्य में रामभक्ति का नया सोपान जोड़ा है, जिसका प्रसार उत्तरोत्तर अधिक हुआ और रामभक्ति एकोन्मुख होने से बच गयी। इस प्रकार इनके भक्तिकाव्य में कवि की प्रतिभा का एक रामभक्ति का एक नया उन्मेष मिलता है।

निष्कर्षतः स्वामी अग्रदास हिन्दी भक्तिकाव्य के महान् रसिक-साधक कवि हैं। इनके भक्तिकाव्य में निहित रसिक-साधना से कर्म और साहित्य दोनों दृष्टियों से भारतीय समाज के लिए मंगलकारी ही रहा है। इनकी रामभक्तिमयी रसिक उपासना के सामाजिक-आध्यात्मिक अवदान को कभी भूलाया नहीं जा सकता है। इनके आराध्य राम-जानकी के युगल रसिक रूप को लोक ने सहर्ष स्वीकारा है। साथ ही युगल स्वरूप के वात्सल्य, दास्य, सख्य, माधुर्य व शांत रूपों में रसिक भावना से अंगीकार किया है। निश्चित रूप से इनके आराध्य देव सदा युगल बिहारी के दाम्पत्य रूप में ही उपस्थित हैं। इसीलिए वे कहते हैं कि, 'यह दंपति वर ध्यान रसिक जन नित प्रति ध्यावैं। रसिक बिना यह ध्यान और सपनेहुँ नहीं पावै।' निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि स्वामी अग्रदास ने आध्यात्मि एवं धार्मिक क्षेत्र में अपनी भक्तिमयी काव्य-छंदों के रचना संसार में राम और जानकी के रसमय या श्रृंगारी लीलाओं से रससिक्त किया है। साथ ही अपने आराध्य के दाम्पत्य युगल स्वरूप में लोकजीवन के मुक्ति का आधार बताया है।

संदर्भ ग्रंथ —

- ¹ रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, डॉ. भगवती प्रसाद सिंह, अवध साहित्य मंदिर, बलरामपुर (गोंडा), उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, संवत् 2014, पृ. — 88
- ² हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास-प्रथम खण्ड, गणपतिचन्द्र गुप्त, लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-01, ग्यारहवाँ संस्करण : 2015, पृ. — 410
- ³ श्रीभक्तमाल टीका, श्रीनाभादास, प्रकाशक— गीताप्रेस गोरखपुर, सं. 2074 पाँचवाँ पुनर्मुद्रण, पृ.— 376
- ⁴ हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-211001, आठवाँ संस्करण-2012, पृ. — 97
- ⁵ हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, छठी आवृत्ति-2013, पृ. — 154
- ⁶ हिंदी काव्य गंगा, संपादक— सुधाकर पांडेय, प्रकाशन—नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण : 1990, पृ. — 163
- ⁷ हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास-प्रथम खण्ड, गणपतिचन्द्र गुप्त, लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-01, ग्यारहवाँ संस्करण : 2015, पृ. — 412
- ⁸ अग्रदान ग्रन्थवाली, संपा. डॉ. बलभद्र तिवारी, सत्येन्द्र प्रकाशन, 30, पुराना अल्लापुर, इलाहाबाद-06, प्रथम संस्करण : 1985, कुण्डलियाँ, पृ. — 17
- ⁹ अग्रदान ग्रन्थवाली, संपा. डॉ. बलभद्र तिवारी, सत्येन्द्र प्रकाशन, 30, पुराना अल्लापुर, इलाहाबाद-06, प्रथम संस्करण : 1985, ध्यानंजरी, पृ. — 57
- ¹⁰ अग्रदान ग्रन्थवाली, संपा. डॉ. बलभद्र तिवारी, सत्येन्द्र प्रकाशन, 30, पुराना अल्लापुर, इलाहाबाद-06, प्रथम संस्करण : 1985, साधन-गीतावली, पृ. — 37
- ¹¹ अग्रदान ग्रन्थवाली, संपा. डॉ. बलभद्र तिवारी, सत्येन्द्र प्रकाशन, 30, पुराना अल्लापुर, इलाहाबाद-06, प्रथम संस्करण : 1985, साधन-गीतावली, पृ. — 90
- ¹² अग्रदान ग्रन्थवाली, संपा. डॉ. बलभद्र तिवारी, सत्येन्द्र प्रकाशन, 30, पुराना अल्लापुर, इलाहाबाद-06, प्रथम संस्करण : 1985, पृ. — 37
- ¹³ अग्रदान ग्रन्थवाली, संपा. डॉ. बलभद्र तिवारी, सत्येन्द्र प्रकाशन, 30, पुराना अल्लापुर, इलाहाबाद-06, प्रथम संस्करण : 1985, साधन-गीतावली, पृ. — 101
- ¹⁴ अग्रदान ग्रन्थवाली, संपा. डॉ. बलभद्र तिवारी, सत्येन्द्र प्रकाशन, 30, पुराना अल्लापुर, इलाहाबाद-06, प्रथम संस्करण : 1985, पृ. — 23

-
- ¹⁵ अग्रदान ग्रन्थवाली, संपा. डॉ. बलभद्र तिवारी, सत्येन्द्र प्रकाशन, 30, पुराना अल्लापुर, इलाहाबाद-06, प्रथम संस्करण : 1985, पृ. – 31
- ¹⁶ अग्रदान ग्रन्थवाली, संपा. डॉ. बलभद्र तिवारी, सत्येन्द्र प्रकाशन, 30, पुराना अल्लापुर, इलाहाबाद-06, प्रथम संस्करण : 1985, पृ. – 03